शुक्र का राजदर्शन

डॉ0 प्रभा गौतम,

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, विद्यान्त हिन्दू पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ, उ0प्र0

शोध सारांश

भारतीय राजनीतिक चिन्तन की एक समृद्ध परम्परा रही है, मनु, कौटिल्य, भीष्म, शुक्र, इसके प्रमुख प्रणेता रहे हैं। शुक्र द्वारा राजनीतिशास्त्र को 'नीतिशास्त्र' और 'दण्डनीति' के रूप में राजतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुरूप व्याख्यापित किया गया है। शुक्र द्वारा शासन, प्रशासन व सामाजिक, आर्थिक सम्बन्धों में यथार्थवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। शुक्र नीति में राष्ट्र के निर्माण, राजा उसके कर्त्तव्य, उसकी पदनियुक्ति, उत्तराधिकार, मन्त्री, राज्य के मित्रों, शत्रुओं, आय के स्रोत, कोष, व्यय, लोक प्रशासन, न्याय प्रशासन, नगर संरचना, युद्ध, युद्धनीति, सेना, सेना संरचना, विदेश नीति आदि के विषय में विस्तृत व्यवहारिक व्यवस्था प्रदान की है, जो वर्तमान सन्दर्भों में भी अनुकरणीय है।

मुख्य शब्द – *शुक्र, राज्य, राजा, प्रजा, उत्तराधिकार, शासन, प्रशासन*

कौटिल्य रचित 'अर्थशास्त्र' के अतिरिक्त यदि अन्य कोई ग्रन्थ राज्य, राजा और शासन पर भारतीय राजनीतिक विचार चिन्तन में प्रसिद्ध है, तो वह शुक्र द्वारा रचित 'शुक्रनीति' है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र', मैकियावली की 'प्रिन्स' की भाँति शुक्रनीति शासन कौशल से सम्बन्धित राजनीतिक प्रकृति का ग्रन्थ हैं, जो व्यवहारिकता पर आधारित है। डॉ0 श्यामलाल पाण्डे द्वारा इसे भारत की दण्ड प्रधान विचारधारा पर आधारित एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ बताया गया है। 'शुक्रनीति' के रचनाकार एवं रचनाकाल दोनों ही विषयों में मतमतान्तर हैं। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों और जनश्रुतियों के अनुसार शुक्र के उशना, भार्गव, कवि, योगाचार्य नामों का उल्लेख मिलता है, कौटिल्य द्वारा भी अर्थशास्त्र में उशना ऋषि को राजशास्त्र की एक प्रमुख धारा का प्रवर्तक स्वीकार किया गया है, लेकिन जो ग्रन्थ शुक्रनीति के रूप में उपलब्ध है, अनेक कारणों से उसे 'अर्थशास्त्र' से पूर्व की रचना स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि शुक्रनीति में जिस भारतीय समाज, संस्कृति का चित्रण किया गया है, वह उस काल की प्रतीत नहीं होती है। राजशास्त्र सम्बन्धी विषयवस्तु के आधार पर निःसन्देह इसे गुप्तकालीन रचना माना जा सकता है, जो भारतीय गुरु–शिष्य ज्ञान–परम्परा पर सम्भवतः आधारित है। शुक्रनीति में राज्य, राजा एवं शासन कला का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है, इस कारण यह राजनीतिशास्त्र की अमूल्य धरोहर है। इस दृष्टि से 'शुक्रनीति' में शुक्र द्वारा उल्लिखित राजनीतिक विचारों का विश्लेषण आवश्यक है।

मनु, भीष्म, कौटिल्य की भाँति शुक्र द्वारा भी राज्य को एक दैवीय संस्था माना गया है। वह राज्य के आवयिव स्वरूप में विश्वास करते हुए राज्य के 'सप्तांग' सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। स्वामी अमात्य, सुदृढ़, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल शुक्र के अनुसार राज्य के सात अंग हैं।

स्वाम्यमात्मयसुहृत्कोश राष्ट्र दुर्ग बलानि च।
सप्तागमुच्यते राज्यं तन्त्र मूर्धा नृपः स्मृतः।।

–श्लोक–61, अध्याय–1, शुक्रनीति

सप्तांग सिद्धान्त में उन्होंने राज्य की उपमा पुरुष और दूसरे स्थल वटवृक्ष से की है, जिस प्रकार पुरुष और वृक्ष के कई अंग हैं, उसी प्रकार राज्य के भी सप्तांग हैं। राजा को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ मानते हुए मस्तिष्क के समान माना है। राज्य के सप्तांग की तुलना उन्होंने मानव शरीर से की है।

दृगमात्यः सुहृच्छोत्रं मुखं कोशो बलं मनः।
हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ राज्यांगानि स्मृतानि हि।।

–श्लोक–62, अध्याय–1, शुक्रनीति

राजा सप्तांग सिद्धान्त के अनुसार शीर्ष पर हैं, प्राकृतिक गुण, तम, रज और सत के आधार पर राजा को शुक्र द्वारा तीन भागों में विभक्त किया गया है, तमोगुण प्रधान राजा राक्षसंशधारी, रजोगुण प्राधान्य मानवांशधारी एवं सतोगुण प्रधान को देवांशधारी कहा गया है, यह शुक्र की दैवीय सिद्धान्त की मौलिक देन है। शुक्र ने मनु, भीष्म, कौटिल्य की ही भाँति राजा को दण्ड का प्रतीक माना है, राज्य में शान्ति सुव्यवस्था, प्रजा को स्वधर्म के पालन के लिए प्रेरित करने हेतु वह दण्ड को धारण करता है, राजा प्रजा कल्याण का कारक है, अतः दण्ड का प्रयोग उसे जनकल्याण हेतु ही करना चाहिए, उसे प्रजा सम्मुख स्वयं का आदर्श चरित्र रखना चाहिए, क्योंकि वह प्रजापालक के साथ प्रजारंजक भी है। शुक्रनीति में राजा के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख है, यथा–दुष्टनिग्रह, प्रजापरिपालन, भूमिसंग्रह, कोष अर्जन, राजसूय यज्ञ आयोजन, शत्रुमर्दन, अधीन राजाओं से कर वसूलना राजा के प्रमुख कर्त्तव्य बताये गये हैं।

शुक्र राजतन्त्र का समर्थक है, राजा की नियुक्ति हेतु कुछ योग्यताओं का उल्लेख शुक्रनीति में किया गया, यथा– प्रथम पैतृक आधार, शुक्र द्वारा पैतृक आधार पर राजा की नियुक्ति का समर्थन किया गया है, क्योंकि तत्कालीन समय में राजा की पद प्राप्ति का यही आधार प्रचलित था। द्वितीय– ज्येष्ठता का आधार, जिसमें राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राजा का उत्तराधिकारी होगा, यदि उत्तराधिकार के इस नियम का अनुपालन नहीं होगा, जो राज्य कई भागों में विभक्त हो जायेगा, जो राज्य के लिए हितकारी नहीं होगा। इस विषय में शुक्रनीति में उल्लेख है, ‘‘राज्य के अनेक भागों में विभक्त हो जाने से राजा का अकल्याण होता है। जब राज्य अनेक भागों में विभक्त हो जायेगा तो इसके इन छोटे–छोटे भागों का अपहरण करने के लिए शत्रु सचेष्ट हो जायेंगे।’’

राज्यविभजनाच्छे योनभूपानां भवेद् खलु।
अल्पीकृतंविभागेन राज्यं शत्रुजिघृक्षति।।

–श्लोक–345, अध्याय–1, शुक्रनीति

तृतीय शारीरिक पूर्णता का सिद्धान्त– यदि उत्तराधिकारी शारीरिक दृष्टि से अपूर्ण है तो शुक्र उसे उत्तराधिकार के अधिकार से वंचित रखता है। इस विषय में शुक्रनीति में उल्लिखित है कि, ‘‘यदि ज्येष्ठ भ्राता बधिर, गूंगा, अन्धा अथवा नपुंसक हो तो वह राज्याधिकारी नहीं होगा, उसका भ्राता अथवा उसका पुत्र उसके स्थान पर राजपद का उत्तराधिकारी होगा।’’

ज्येष्ठोपिबधिरः कुष्ठीमूकोधः पंढ एवयः।
सराज्यार्होभवेन्तैवभ्रातातत्पुत्र एवहि।।

–श्लोक–342, अध्याय–1, शुक्रनीति

चतुर्थ– चारित्रिक योग्यता को भी उत्तराधिकार का आधार माना गया है, शुक्र का मानना है कि राज्य के सभी क्रियाकलापों का मूल आधार राजा होता है। राजकुल में ज्येष्ठ पुत्र के रूप में जन्म लेने के उपरान्त भी, किसी उत्तराधिकारी को चारित्रिक दुर्बलता के आधार पर राजपद से वंचित किया जा सका है। शुक्र ने इस विषय में अनेक राजाओं, यथा–राजा नहुष, राजा वेणु आदि के उदाहरण दिये कि इन राजाओं को दुराचार के कारण राजपद से वंचित किया गया। वह राजा में दैवीय शक्तियों इन्द्र, वायु, यम, कुबेर, सूर्य, अग्नि और चन्द्र के यथोचित गुणों का समन्वय चाहता

है। राजा का व्यवहार धर्मपरायण होना चाहिए, उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मद जैसे दुर्गुणों का परित्याग कर, चलायमान (अस्थिर प्रकृति) वस्तुओं, यथा—यौवन, जीवन, धन, कान्ति, लक्ष्मी, स्वामित्व के लोभवश आचरण नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शुक्र राजा के निरन्तर विद्याधन अर्जन पर भी बल देता है। पंचम उत्तराधिकार नियम में वह प्रजा की अनुमति के सिद्धान्त का निरूपण करता है, इस सम्बन्ध में शुक्रनीति में उल्लेख है कि, ''यदि राजा प्रजा के गुण, नीति और बल का द्वेषी हैं तो कुलक्रमागत राजा होने पर भी राजा अधार्मिक समझा जायेगा। इस राजा के स्थान पर राजकुल में उत्पन्न किसी दूसरे गुणवान अधिकारी व्यक्ति को प्रजा की अनुमति लेकर राज्य की रक्षा हेतु पुरोहित राज्य के सिंहासन पर स्थापित कर दे।''

नृपोयदिभवेत्तंतुल्यजेद्राष्ट्रविनाशं।
तत्पदेतस्यकुलजंगुणयुक्तंपुरोहितः।।

—श्लोक—265, अध्याय—2, शुक्रनीति

इस प्रकार राज्य आरोहण में प्रजा की सहमति का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है। षष्ठ—राज्याभिषेक के सिद्धान्त के अनुसार, प्राचीन भारतीय परम्परानुसार युवराज को राज्याभिषेक के पश्चात् ही राजा के रूप में वैधता प्राप्त होती थी, चूंकि राज्याभिषेक में जनता की सहमति और राजा की शपथ के पश्चात् ही राजा राजपद का अधिकारी होता है।

शुक्रनीति के अनुसार राजा को राज्यकार्य सम्पादन हेतु मन्त्रिपरिषद् की आवश्यकता है, चूंकि राजा चाहे कितना भी कुशल क्यों न हो, वह स्वयं सभी कार्य कुशलतापूर्वक सम्पादित नहीं कर सकता है। द्वितीय राजा की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए भी यह आवश्यक है। प्राचीन भारतीय राजशास्त्रीय विचारकों के अनुरूप शुक्र द्वारा भी मन्त्रिपरिषद् में आठ अथवा दस मन्त्रियों की आवश्यकता राज्य कार्य को संचालित करने के लिए आवश्यक बतायी गयी है। शुक्र द्वारा इन मन्त्रियों के पदों का भी उल्लेख किया गया है, यथा—पुरोधा, प्रतिनिधि, प्रधान सचिव, मन्त्री, प्राड्विवाक, पण्डित, सुमन्त्र, अमात्य एवं दूत। मन्त्री पद के लिए शुक्र द्वारा कुछ योग्यताओं का भी निर्धारण किया गया है, यथा—कुलीनवंश में जन्म, अनुभव, राजभक्ति, उच्च चरित्र, नीतिनिपुणता एवं शारीरिक क्षमता। शुक्रनीति के अनुसार प्रत्येक मन्त्रिपद का कार्यक्षेत्र और अधिकार सुनिश्चित है। मन्त्रियों को अपने क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों पर अपने अधिकारियों से मन्त्रणा करने के उपरान्त राजा से विचार—विमर्श करना चाहिए, शुक्र द्वारा अपेक्षा की गई है कि मन्त्रणा में प्रत्येक मत लेखबद्ध होना चाहिए।

राज्य कार्य संचालन हेतु अनेक कार्मिकों की आवश्कयता होती है, कार्मिकों की नियुक्ति और पदमुक्ति के सम्बन्ध में शुक्रनीति में विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। शुक्र के अनुसार, ''किसी व्यक्ति के विद्याध्ययन काल के समाप्त हो जाने के उपरान्त उस व्यक्ति की योग्यता और सामर्थ्य के अनुरूप उसे कार्य में नियुक्त करना चाहिए।''

समाप्तविद्यं संदृष्टातत्कार्ये तंनियोजयेत।
विद्याकलोत्तमान्दृष्ट्रावत्सरे पूजयेच्चतान।।

—श्लोक—367, अध्याय—1, शुक्रनीति

शुक्र कार्मिकों की नियुक्ति में कुल, जाति के महत्त्व को स्वीकार नहीं करता है, उसके अनुसार कुल, जाति योग्यता की निर्धारक नहीं है। इसके प्रयोग की सीमा सामाजिक जीवन तक ही उचित है। कर्मचारियों के प्रोन्नति के सिद्धान्त एवं नियुक्ति में पारिवारिक पात्रता के विचार से भी वह सहमत है। अलोकप्रिय, अयोग्य, भ्रष्ट आचरण वाले अकर्मठ कर्मचारी को परीक्षण के उपरान्त पदच्युति का समर्थन भी शुक्र द्वारा किया गया है। सत्याचरण, परोपकार और आज्ञापालन को शुक्र कर्मचारी के आवश्यक गुण मानता है, यदि इन गुणों से कार्मिक विमुख होता है तो वह पदच्युति

का अधिकारी है। प्रशासन में कार्यकुशलता स्थापित करने के लिए कौशलानुसार कार्मिकों की स्थानान्तरण नीति का भी शुक्र पक्षधर है। इसके अतिरिक्त कार्मिकों के कार्यों का समय–समय पर निरीक्षण की सलाह भी शुक्र द्वारा दी गई है, साथ ही कार्मिक की कार्य करने की गति, मात्रा, कार्य की गुरुता तथा लघुता के आधार पर वेतन निर्धारण का मापदण्ड होना चाहिए। शुक्र के अनुसार सेवक की भृति रोकना या विलम्ब से देना कार्मिक की कार्यकुशलता को प्रभावित कर सकता है, इससे राज्य को बचने की सलाह शुक्र द्वारा दी गयी है। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार प्रदत्त करने एवं कर्त्तव्य से विमुख सेवक को दण्ड का विधान भी शुक्र द्वारा स्वीकृत किया गया है।

राज्य कार्य संचालन हेतु कोष की संग्रहित करने के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख शुक्र द्वारा किया गया है, यथाः प्रथम दण्ड– राज्य के नियमों की अवहेलना पर दण्ड, द्वितीय उपायन– विभिन्न शुभ अवसरों पर राजा को प्रजा से प्राप्त उपहार, तृतीय विजय– अन्य राज्यों पर विजय प्राप्ति पश्चात् अधार्मिक राजा के कोष का अधिग्रहण, चतुर्थ अपहरण– दुरागामी के धन का अधिग्रहण, किन्तु राज्य के कोष का प्रमुख स्रोत जनता से कर का संकलन ही है, जिन्हें शुक्र द्वारा विभिन्न भागों में विभाजित किया गया है, जैसे– भाग (कृषि उपज पर), आकर कर (खनन कार्य पर), शुल्क (क्रय–विक्रय से आय पर), भाटक (आवागमन के साधनों पर), आपातकालीन कर (आपद स्थिति में जनता से संग्रहित कर)। इस प्रकार शुक्रनीति में दो प्रकार की कर प्रणाली द्रष्टव्य हैं, प्रथम–स्थानीय, जिसका प्रयोग स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता है, द्वितीय–राष्ट्रीय। राष्ट्रीय कर प्रणाली भी दो भागों में विभक्त है, प्रथम–सामान्यकालीन, जो आर्थिक क्षमता के आधार पर आधारित है, द्वितीय–आपदकालीन, जिसमें राजा को आपदा के समय करमुक्त मदों पर भी कर लगाने का अधिकार प्राप्त होता है, जैसे–तीर्थस्थान एवं देवस्थान आदि पर।

शुक्र द्वारा कर ग्रहण की मात्रा का भी विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है, किन्तु आपातकाल को छोड़कर अकारण ही इसमें वृद्धि के पक्ष में वह नहीं है। इसके साथ ही जनता से अपेक्षा की गई है कि वह भी कर के भुगतान में विलम्ब न करे। शुक्र संग्रहीत कोष को सैन्यबल, प्रजारक्षण और यज्ञ हेतु ही व्यय करने का विधान करता है। राजा को स्वयं के आमोद–प्रमोद पर व्यय को वह राजा के नरकगामी होने का कारक बताता है। शुक्र द्वारा कर लगाने के सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है, यथा– कर केवल लाभ पर हो (मूल पर नहीं), कर की मात्रा उतनी हो, जितनी देने में प्रजा सक्षम हो (कष्ट न हो), करारोपण का आधार जनरक्षण हो, राजा द्वारा जनता के उत्पीड़न के लिए धनसंग्रह नहीं करना चाहिए, नहीं तो ऐसा राज्य एक दिन शत्रु के अधीन हो जाता है।

आचारहीन लोगों पर नियन्त्रण के लिए शुक्र द्वारा न्याय व्यवस्था का भी विस्तृत वर्णन किया गया है, न्याय कार्य को व्याख्यायित करते हुए शुक्र द्वारा कहा गया है कि, ''जिस कार्य के करने से सत और असत का विचार कर राजा अपनी प्रजा को धर्म में संलग्न रखता है, उस कार्य को व्यवहार की संज्ञा दी है।

स्वप्रजाधर्म संस्थानं सदसत्प्रविचारतः।
जायतेचार्थ संसिद्धिर्व्यवहारस्तु येनसः।।

–श्लोक–527, अध्याय–4, शुक्रनीति

शुक्र द्वारा न्यायिक संरचना को दो भागों में विभाजित किया गया है– स्थानीय न्यायालय और द्वितीय राज्य द्वारा नियन्त्रित न्यायालय। स्थानीय न्यायालय को वह त्वरित न्याय, स्थायित्व, सन्तोष, अपव्यय, न्याय के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। शुक्र के अनुसार समाज के सभी वर्ग अपने–अपने कुल में

प्रचलित परम्पराओं और धर्म के अनुसार निर्णय स्वयं कर ले, लेकिन तपस्वियों से सम्बन्धित विवादों को वह तीन वेदों के ज्ञाताओं द्वारा, मायावी और तान्त्रिक व्यक्तियों के विवादों में राजा द्वारा निर्णय का निषेध, वनवासियों के विवाद वनवासियों द्वारा निर्णीत करने का विचार शुक्र प्रदान करता है। शुक्र द्वारा स्थानीय न्यायालयों को कुल, श्रेणी, गण नाम से सम्बोधित किया गया है।

श्रेणी न्यायालय सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में हैं, इसके न्यायाधीश, सदस्य आदि अन्य कर्मचारी राजा द्वारा नियुक्त होंगे। यह न्याय व्यवस्था सोपानीय व्यवस्था होगी, जो चतुस्तरीय है, साहसाधिपति का न्यायालय, सभ्य न्यायालय, अध्यक्ष न्यायालय और राजा का न्यायालय। सहसाधिपति का न्यायालय निम्न पायदान पर है, पुर एवं गाँव के साहस सम्बन्धी (हिंसक) विषय उसके क्षेत्राधिकार में हैं, द्वितीय स्थान सभ्य न्यायालय का है, जिसके न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए शुक्र द्वारा योग्यतायें निर्धारित की गई हैं, यथा—नियमों का ज्ञान, विद्वान, सदाचारी, शीलवान, गुणवान, धर्म का ज्ञाता, साथ ही न्यायाधीश की योग्यता के मापदण्ड से जाति को पृथक रखा है। तदुपरान्त तृतीय स्तर पर अध्यक्ष न्यायालय का विधान किया गया है, एवं सर्वोच्च स्थान पर राजा का न्यायालय है, शुक्र के अनुसार इस न्यायालय में राज्य के विशिष्ट विवादित विषय, मौलिक विवाद, पुनरावलोकन सम्बन्धी विवाद लाये जा सकते हैं। विवादों पर स्वयं राजा द्वारा निर्णय लेने का शुक्र द्वारा निषेध किया गया है। उसके अनुसार प्राड्विवाक्, अमात्य, ब्राह्मण और पुरोहित के साथ राजा को अपनी बुद्धि को स्थिर कर और क्रोध तथा लोभ से रहित होकर धर्मशास्त्र के अनुसार वादी और प्रतिवादी के समक्ष क्रम से व्यवहारों का अवलोकन करना चाहिए। न्याय देने से पूर्व सत्यता तक पहुँचने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता पर बल दिया है, प्रमाण दो प्रकार के होंगे— मनुष्य प्रमाण और दैवी प्रमाण, जो साक्ष्य लिखित एवं भोग प्रमाणों से युक्त हो सकते हैं, इनके अभाव में गुप्त अन्वेषण, युक्ति प्रयोग और शपथ का आश्रय भी लिया जा सकता है। शुक्र द्वारा अपराधों का चार भागों में वर्गीकरण किया गया है— कायिक, वाचिक, मानसिक एवं सांसारिक। निर्णयों के प्रकारों की व्यवस्था भी शुक्र द्वारा की गई है, यथा—प्रमाण, तर्कसिद्धि, अनुमान, सदाचार, शपथ, राजाज्ञा एवं वादी की सहमति द्वारा। दण्ड की मात्रा अपराध की गुरुता एवं लघुता के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए। चार प्रकार के दण्ड की व्यवस्था शुक्र द्वारा की गई है— वाकदण्ड, धिकदण्ड, अर्थदण्ड एवं कार्यदण्ड।

राष्ट्र की सोपानीय संरचना का वर्णन भी शुक्र द्वारा किया गया है। शुक्र द्वारा राष्ट्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि, ‘‘राजा के अधीन जो भूभाग होता है वह राष्ट्र कहलाता है और उससे सौ गुनी और सब गुणवाली कुबरेता होती है।’’

यस्याधीनंभवेद्या वप्तद्राष्ट्र तस्य वैभवेत्।
कुबेरताशत गुणाधिका सर्वगुणात्ततः।।

—श्लोक—243, अध्याय—4, शुक्रनीति

शुक्र द्वारा राष्ट्र को कई भागों में विभक्त किया गया है, जैसे—कुम्भ, पल्लि, बस्ती, ग्राम, नगर। शुक्र द्वारा गाँव की संरचना, सुविधाओं, मकानों की संरचना, सड़कों, पानी की निकासी की व्यवस्था, सुरक्षा व्यवस्था, वृक्षारोपण आदि का विस्तृत वर्णन किया है। गाँव के प्रबन्ध के लिए छः अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया है, साहसाधिपति, ग्रामनेता, भागहार, लेखक, शुल्कग्राहन, प्रतिहार।

साहसाधिपति चैव ग्रामनेताश्मेवच।
भागहारंतृतीयं तुलेखकंचचतुकं।।
—श्लोक—120, अध्याय—2, शुक्रनीति
शुल्कग्राहंपंचमय प्रतिहारं तथैवच।

षटकमेतन्नियोक्तव्यंग्रामे ग्रामे पुरेपुरे।।

–श्लोक–121, अध्याय–2, शुक्रनीति

साहसादिक का कार्य विवाद निवारण एवं दण्ड, ग्राम नेता अथवा ग्राम्य द्वारा गाँव के निवासियों की दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों से रक्षा, भागनहार का कार्य, भूमिकर का संचयन, लेखक का कार्य निर्णीत विषयों को लेखबद्ध करना, प्रतिहार का सेवा करना कर्त्तव्य बताये गये हैं। यात्रियों की सुविधा, रक्षा, विश्राम हेतु दो ग्रामों के मध्य पन्थशाला की भी व्यवस्था की गई है।

नगरों की व्यवस्था का उल्लेख भी शुक्र द्वारा किया गया है, ग्राम की तरह नगर व्यवस्था संचालन के लिए भी छः प्रकार के अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है, इसी के साथ बाजार व्यवस्था, व्यापारियों पर नियन्त्रण, भवनों की व्यवस्था आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

राज्य की सुरक्षा और शान्ति व्यवस्था की स्थापना के लिए सैन्यबल की आवश्यकता, संगठन पर भी शुक्र द्वारा विस्तृत व्यवस्था दी गई है, सेना को दो भागों में विभक्त किया गया है–स्वगमा (पैदल) व अन्यगमा (हाथी, घोड़ा, रथ)। सेना के प्रशिक्षण, व्यूहरचना के नियमों का भी उल्लेख किया गया है। युद्ध को परिभाषित करते हुए शुक्र ने कहा है कि, "जब दो राजाओं में शत्रु भाव उत्पन्न हो जाता है और दोनों राजा अपनी विजय के लिए उद्यत होने का दृढ़ संकल्प कर लेते हैं और परस्पर संघर्ष में संलग्न हो जाते हैं तो ऐसी अवस्था को युद्ध कहते हैं। शुक्र द्वारा युद्ध की प्रकृति के आधार पर युद्धों के विभिन्न प्रकार बताये हैं, यथा–दैविक युद्ध, आसुर युद्ध, मानव युद्ध (शस्त्र युद्ध–बाहुयुद्ध), धर्मयुद्ध, कूटयुद्ध।

विदेश नीति के सम्बन्ध में शुक्र द्वारा चार प्रकार के राज्यों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है– विजगीषु, मित्र, शत्रु एवं उदासीन राज्य। राज्यों का वर्गीकरण का आधार भौगोलिक न होकर राजहित माना है जो सर्वोपरि है, जिसकी पूर्णता के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति को सहमति प्रदान की गई। राजहित के दृष्टिकोण को रखकर परराष्ट्र नीति में षडगुण नीति (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, आश्रय, द्वैधी भाव) का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त दूत, गुप्तचर, सेना एवं युद्ध विदेश नीति संचालन के अन्य साधन हैं। राजा को पराजित राज्य की प्रजा के साथ दुर्व्यवहार न करने का परामर्श भी दिया गया है।

शुक्रनीति में शुक्र द्वारा उल्लेखित राजशास्त्र सम्बन्धी विचारों के विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ भारतीय राजविज्ञान की एक अनूठी धरोहर है, इसमें शासन, प्रशासन के प्रत्येक पक्ष पर सूक्ष्म रूप से प्रकाश डाला गया है, राष्ट्र, राजा, प्रजा की पदनियुक्ति, कर्त्तव्य, जीवनचर्या, राजा गुण, मन्त्रियों की नियुक्ति व उनके वेतन, वरीयता, नागरिक प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना व उनके वेतन, कार्यप्रणाली, सुशासन, प्रशिक्षण, प्रोन्नति, अवनति, पेन्शन आदि की विस्तृत व्याख्या की गई है। शुक्र द्वारा तत्कालीन समय में प्रचलित राजतन्त्रीय शासन प्रणाली का भी वर्गीकरण कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। परराष्ट्र नीति के विषय में आदर्शवादी व यथार्थवादी नीति का समन्वय किया गया है, जो राष्ट्रों के लिए आज भी अनुकरणीय है। कर प्रणाली पर भी बहुत विस्तृत व्यवस्था दी गई है, साथ ही करों से प्राप्त आय को राज्य द्वारा किस क्षेत्र में कितना व्यय किया जाये, इसका भी निर्देश दिया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शुक्रनीति एक राजदर्शन मात्र नहीं है, अपितु यह व्यावहारिकता और यथार्थपरकता पर आधारित दर्शन है और राजविज्ञान के साथ–साथ लोकप्रशासन में एक मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बन्धोपाध्याय एन0सी0, हिन्दू पालिटी एण्ड पालिटिकल थ्योरीज, प्रिन्ट पब्लिशर्स, जयपुर, 1989
2. काने पी0वी0, हिस्ट्री ऑफ अर्थशास्त्र, वॉल्यूम–1, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च, इन्स्टीट्यूट, पूना, 1968
3. शर्मा उर्मिला, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, अटलांटिक पब्लिशर्स, 1996
4. अलतेकर प्रो0 अनंत सदाशिव, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013
5. खेमराज श्रीकृष्णदास, शुक्रनीति, श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना, मुम्बई
6. पाण्डेय डॉ0 श्यामलाल, भारतीय राजशास्त्र–प्रणेता, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1989